दूसरा अध्याय

समकालीन हिंदी कहानी का संक्षिप्त इतिहास (सन् 1971-2000)

2.1 भूमिका :

हिंदी साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है। भारत में कहानी लिखने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है। कहानी का उद्‌भव हुए हजारों वर्ष बीत चुके हैं। कहानी ने आरंभ से लेकर अब तक अनेक रूप बदले हैं। प्राचीन काल के धर्म ग्रन्थ ब्राह्मण साहित्य में वैदिक साहित्य, पुराण, उपनिषद् स्मृति व महाकाव्यों में आख्यान व कहानियों की महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। आगे चलकर जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य व जातक कथाओं में भी कहानियों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत में रचित पंचतंत्र की कहानियाँ विश्व-विख्यात हैं। हिंदी कहानी का उद्‌भव व विकास यात्रा में कहानी की विधा ने समय के अनुसार सफलता प्राप्त की है। स्वतंत्रतापूर्व हिंदी कहानी में धन-लिप्सा, मनोरंजन, उपदेशात्मक प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

हिंदी कहानी की विकास यात्रा में प्रेमचंद के आगमन से समाज के जटिल पक्षों का घोर यथार्थ चित्रण किया। सन् 1900 में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिंदी कहानी का आरम्भ माना जाता है। हिंदी की आरम्भिक कहानियां 'इन्दुमती' (किशोरीलाल स्वामी) 'ग्यारह वर्ष का समय' (रामचन्द्र शुक्ल), 'दुलाईवाली' (बंगमहिला) 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित होने के कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। प्रेमचन्द की कहानी 'पंचपरमेश्वर' सन् 1916 में 'सरस्वती' पत्रिका में ही प्रकाशित हुई। हिंदी कहानी के विकास युग में प्रेमचन्द सन् 1920-30 की अपनी कहानियों में यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें 'शतरंज के खिलाड़ी', 'आत्माराम', 'वज्रपात' आदि कहानियाँ है। प्रेमचन्द के समकालीन जयशंकर प्रसाद ने अनेक कहानियों की रचना की। प्रेमचन्द के पश्चात् हिंदी कहानी में नए आयाम स्थापित हुए। जैनेन्द्र कुमार की कहानियों में 'हत्या', 'खेल' (1928), व पाजेब' (1942) आदि का नाम लिया जा सकता है। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में

मनोवैज्ञानिक सत्य को उजागर किया है। 'अज्ञेय' ने भी जैनेन्द्र की परपंरा को विकसित किया है। 'परंपरा' (1940), 'कोठरी की बात' (1945) आदि प्रमुख कहानियों का नाम लिया जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी ने अनेक करवटें लीं। जिसमें नई कहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहानी, जनवादी कहानी, आँचलिक कहानी, विदेशी कहानी, शुद्ध कहानी आदि कई आंदोलन उभर कर सामने आए। हिंदी कहानी के छठे दशक में कहानी लेखन में परिवर्तन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रहा है। 1955 ई॰ में 'कहानी' पत्रिका के पुनः प्रकाशन ने कहानी को आगे बढ़ाने में योगदान दिया। नई कहानी में प्रयोग की प्रवृत्ति को अधिक महत्त्व दिया। नई कहानी में परपंरागत ढ़ांचे को तोड़ने की प्रवृत्ति को अपनाया। नए कहानीकारों में कमलेश्वर (राजा निरबंसियाँ), मोहन राकेश (एक और जिन्दगी), उषा प्रियंवदा (वापसी) राजेन्द्र यादव (टुटना) आदि प्रमुख हैं।

1960-62 ई॰ के आस-पास नई कहानी का स्थान 'अकहानी' ने लिया। अकहानी वस्तुतः विदेशी कहानी से प्रभावित मानी जाती है। इसमें सामाजिक संघर्षों के विषयों को नकारा गया है। ज्ञानरंजन (छलांग), दूधनाथ सिंह (रीझ) आदि कहानियाँ अकहानी आंदोलन की मुख्य कहानियां हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नुभण्डारी आदि कहानीकार है। अकहानी के बाद सचेतन कहानी का प्रारम्भ 1964 से माना जा सकता है। महीप सिंह ने ही सचेतन कहानी आंदोलन को प्रारम्भ किया था। सचेतन कहानी के केन्द्र में मानव-जीवन को आधार बनाया। सचेतन कहानी मानव-जीवन में जागरूकता, संघर्षशीलता को व्यक्त करती है। इसमें 'धुंधले कोहरे' (महीप सिंह), 'बर्फ' (सुरेन्द्र अरोड़ा), 'और भी कुछ' (महीप सिंह) आदि सचेतन कहानियाँ हैं। सचेतन कहानी के बाद अमृतराय ने सहज कहानी का नारा दिया। सहज कहानी के अंतर्गत कुछ नयापन प्रस्तुत नहीं हुआ। 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से कमलेश्वर ने समांतर कहानी आंदोलन का प्रारम्भ किया। इस आंदोलन में आम आदमी व सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। 'मंच' पत्रिका के माध्यम से राकेश वत्स ने सक्रिय कहानी आंदोलन की शुरूआत की। इसमें आम आदमी के शोषण का विरोध हुआ है। आम आदमी को सक्रिय बनाना, उजागर करना। सक्रिय कहानी के पश्चात् जनवादी कहानी आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस कहानी की वैचारिकता

मार्क्सवादी रही है। इस आंदोलन के बाद शुद्ध कहानी आंदोलन प्रारम्भ हुआ, जिसमें संकुचित विचारधारा को सुलझाने का प्रयास किया है। (सन् 1971-2000) तक हिंदी कहानी का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार प्रस्तुत है -

2.1.1 समांतर कहानी :

समांतर कहानी आंदोलन आठवें दशक का आंदोलन माना गया है। समांतर कहानी आंदोलन का सूत्रपात कमलेश्वर ने 'सारिका' पत्रिका के सम्पादकीय 'मेरा पन्ना' से किया है। यह सम्पादकीय सन् 1972 के आसपास छपा। 'सारिका' के अक्तूबर 1974 अंक में उन्होंने आम आदमी से संबंधित कहानियों को समांतर कहानी के नाम से व्यक्त किया। 'सारिका' पत्रिका के अक्तूबर 1974 से लगातार दस अंकों की एक शृंखला समांतर कहानी विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुई और 'मेरा पन्ना' स्तंभ के अंतर्गत सर्वहारा वर्ग में आम आदमी से संबंधित समांतर कहानी को विकसित किया। समांतर कहानी आंदोलन का चिन्तन केन्द्र जनसामान्य व सामाजिक यथार्थ के प्रति विशेष आग्रह था। समांतर से अभिप्राय एक वर्ग को विशेष दर्जा न देकर सभी वर्गों की समानता है। कमलेश्वर समांतर शब्द का आशय समयगत सत्य से लेते हैं। समांतर शब्द से अभिप्राय "एक समूचे परिवेश में आरोपित सम्यक् अनुशीलन से है जिसमें रचना दृष्टि का विस्तार व्यापकत्व के साथ एकतत्व में अनुप्राणित है।"[1] समांतर कहानी सामाजिक यथार्थ जीवन प्रसंगों के संदर्भ में रची गई है, जो एक आम आदमी के जीवन को स्पष्ट करती है। समांतर कहानी आंदोलन परंपरागत मूल्यों को नकारता है। कमलेश्वर के शब्दों में-"समांतर कहानी तटस्थता और निरपेक्षता को पीछे छोड़, सम्बद्धता की बात करती है, वह मूल्यों के व्यवहार में लाये जाने के प्रति सजग है। उन्हें कार्यान्वित भी करना चाहती है।"[2]

समांतर कहानियों में अधिकांश मजदूरों, श्रमिकों, खेतिहर मजदूरों, किसान, निम्न वर्ग एवं मध्यम वर्ग की सामान्य समस्याओं को स्पष्ट रूप से दर्शाया है। समांतर कहानी आंदोलन के केन्द्रीय पात्र आम आदमी को परिभाषित करते हुए अशोक भाटिया लिखते हैं-"वास्तव में आर्थिक तंगी में संघर्ष कर रहे आम आदमी को ही समांतर कहानी केन्द्रित करती है। यही कारण है कि भूमिहीन किसान, खेतिहर मजदूर, फुटपाथ पर सोया आदमी, प्रकाशकीय तंत्र का आकार, पढ़ा-लिखा

नौजवान, वर्ग और वर्ग-व्यवस्था से पीड़ित व्यक्ति दूसरे शब्दों में एक सर्वहारा व्यक्ति ही आम आदमी है जो समांतर कहानी आंदोलन का केंद्र बिन्दु बना है।"[3] समांतर कहानी आंदोलन जाति, वर्ण, उच्च-निम्न की बेड़ियों से जकड़े हुए भारतीय समाज के प्रति जागरूक है। समांतर कथाकारों ने आम आदमी के आर्थिक अभाव के कारण हुई दयनीय स्थिति को पहचाना। आम आदमी की कमजोर स्थिति के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास किया-"समांतर कहानी संस्थाओं और व्यवस्थाओं के वर्ग चरित्र की पहचान कराती है और उसके नकाब को बेपर्दा करती है।"[4] समांतर कहानी में आम आदमी चर्चित है। समांतर कहानी आंदोलन में आम आदमी को ही केन्द्र में रख कर कहानियों का सृजन किया गया है। समांतर कहानी में संघर्ष व विद्रोह की भावना को भी दर्शाया गया है। समांतर कहानी आंदोलन में सामान्य जन का अर्थ सर्वहारा या मध्यम वर्ग को ही बताया गया है। समांतर कहानी आंदोलन में भ्रष्ट राजनीति को भी उभारा गया है। रेखा शर्मा समांतर कहानी के प्रति अपने विचार व्यक्त करती हुई कहती है-"समांतर कहानियों में संघर्षशील और विद्रोहात्मक मानसिकता के विविध चित्र मिलते हैं। सामाजिक यथार्थ जीवन प्रसंगों के संदर्भ में रची गई है और मानवीय सार्थकता की पहचान में जुटी हुई है। इन कहानियों में राजनीतिक संदर्भ भी आक्रोश का विषय बना हुआ है क्योंकि यहां न तो कोई तंत्र है और न कोई व्यवस्था है। राजनीतिक बोध को इन कहानियों में उत्तेजना के साथ उभारा गया है।"[5]

समांतर कहानी आंदोलन में आम आदमी अर्थात् निम्न मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग का संघर्ष पूँजीवादी व्यवस्था से भी है। आम आदमी के संघर्ष का एक रूप पूँजीवाद के शिंकजों और अत्याचारों से उभारना है "समांतर कहानी जीवन के स्पंदन के साथ चलने वाली रचनात्मक विधा है और वह अपनी रचनात्मक शक्ति के साथ आम आदमी के नायकत्व को स्थापित कर, भ्रष्ट राजनीतिक और चतुर पूँजीवादी व्यवस्था से संघर्ष कर सामने आ गई है, यही संघर्ष उनकी मूल संवेदना है।"[6] समांतर -1 कहानी में कमलेश्वर ने भ्रष्ट राजनीति के प्रति विचार करते हुए स्पष्ट कहा है-"हम यदि हथियार हैं तो जटिल व विषम परिस्थितियों में फंसे मनुष्य के हथियार हैं, अवसरवादी राजनीति के औजार नहीं।"[7] हेतु भारद्वाज का कहना है कि

आमजन के जीवन संघर्ष उनकी मूल संवेदनाओं में विघटन पैदा करते हैं। उनके जीवन संघर्ष उनके जीने की इच्छा को समाप्त कर देते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान समय में मूल्यों तथा नैतिकता के पतन को समान्तर कहानी अपने मूल विषय के रूप में उठाती है। हेतु भारद्वाज के अनुसार-"समांतर कहानी की मूल संवेदना सामान्यजन के संघर्ष से सम्बद्ध है तथापि पारिवारिक स्तर पर श्रद्धा, सम्मान, सहानुभूति जैसे मूल्यों के विघटन को भी उसने रूपायित किया है। समांतर कहानी ने नयी पुरानी पीढ़ियों के अन्तर को भी देखा है किन्तु समांतर कहानीकारों की दृष्टि यहाँ निस्संग है। समांतर कहानी ने युवा पीढ़ी के इस सोच को भी उभारा है कि अपनी दुर्गति के लिए पुरानी पीढ़ी भी कम जिम्मेदार नहीं है।"[8]

समांतर कहानी आंदोलन में आंदोलन का मूल स्वर आम आदमी की पीड़ा, बेबसी व दु:ख-दर्द की स्थितियों का अंकन करना है। इस आंदोलन के अंतर्गत निम्न वर्ग के जीवन का यथार्थ स्पष्ट हुआ है। आनंद प्रकाश समांतर लेखकों के बारे में अपने विचार व्यक्त हुए कहते हैं-"समांतर लेखक अपनी नियति और सामान्य जन की नियति में कोई भेद नहीं करता, और अपने समय के प्रवाह के साथ चलता हुआ पीड़ित जनता के दु:ख-सुख का समान भागीदार बनता है। कहा जाता है कि इस अर्थ में वह प्रतिबद्ध लेखक से भी आगे संबद्ध लेखक बन जाता है क्योंकि प्रतिबद्ध लेखक तो सामान्य जन की चिंताओं को मात्र वैचारिक समर्थन ही दे पाता है-जिन्दगी को खानों में बांटकर देखने के कारण-जबकि सम्बद्ध लेखक जनता की लड़ाई में बराबरी की हैसियत से शरीक होता है। औसत आदमी की चिंताओं का सहभागी होने के कारण ही शायद समांतर लेखकों की रचनाएं ज्यादा जेन्युइन होती हैं और सही रूप में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इस अर्थ में आज के "सामाजिक विकास" को समांतर का ऋणी होना चाहिए कि कमलेश्वर और पांत के लेखकों ने सामाजिक लड़ाई में शरीक होकर विकास की प्रक्रिया तेज की।"[9] समांतर कहानी आंदोलन में कमलेश्वर, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, निरूपमा सेवती, मुदुला गर्ग, रमेश उपाध्याय, राम अरोड़ा, से० रा० यात्री, इब्राहीम शरीफ, आशीष सिन्हा, विभु कुमार, दामोदर सदन, सतीश जामली, मिथिलेश्वर इन लेखकों ने समांतर कहानी आंदोलन को रचनात्मक मजबूत आधार प्रदान किया। 'इतने अच्छे दिन' (कमलेश्वर),

'तमाशा' (स्वदेश दीपक), 'आदमी' (आशीष सिन्हा), 'तीसरी आँख' (कामतानाथ), 'हरिजन सेवक', 'लहू पुकारे आदमी' (मधुकर सिंह), 'एक चालू आदमी' (दिनेश पालीवाल), 'शहादतनामा' (जितेन्द्र भाटिया), 'एक और हत्या' (मिथिलेश्वर), 'अंधे कुएँ का रास्ता' (अरुण मिश्र), 'चौथा आश्चर्य' (जवाहर सिंह), 'सुरंग में पहली सुबह' (बसंत कुमार), 'परायी प्यास का सफर' (आलमशाह खान), 'अतंहीन दो' (सुदीप), 'श्रमदान' (केशव दुबे) आदि समांतर कहानियाँ है। समांतर कहानी आंदोलन ने नि:सन्देह हिंदी कहानी को समृद्ध किया। यह आंदोलन एक लम्बे समय से मानवीय चेतना को सही अर्थों में एक दिशा और संघर्ष शक्ति देने का प्रयत्न करता रहा है। परन्तु कमलेश्वर द्वारा 'सारिका' पत्रिका का संपादन छोड़ने पर इस आंदोलन को अधिक बल न मिल सका। और समांतर कहानी आंदोलन समाप्त होता नजर आया। परन्तु फिर भी समांतर कहानी ने कहानी के विकास में समुचित योगदान दिया है।

2.1.2 सक्रिय कहानी :

सक्रिय कहानी आंदोलन के सूत्रधार राकेश वत्स है। समांतर कहानी के पश्चात् संपादक राकेश वत्स ने मार्च 1978 और 1979 में 'मंच' पत्रिका अंक में 'मंच'-78 और 'मंच'-79 नाम से सक्रिय कहानी विशेषांक के रूप में प्रकाशित किए। सक्रिय कहानी के केन्द्र में भी आम आदमी है। सक्रिय कहानी आम आदमी के हित के लिए प्रयत्नशील रही है एवं शोषण का विरोध करती है। सक्रिय कहानीकार सुरेन्द्र सुकुमार के अनुसार सक्रिय का अर्थ, "रचनाकार की रचना सक्रियता, शोषित जनता को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करना, उसके वर्ग शत्रु को उसके सामने नंगा करना, वर्ग शत्रु के तमाम माध्यमों, तरीकों एवं उसके मूल्यों का पर्दाफाश करना एवं उससे निपटने के लिए शोषित वर्ग को संघटनात्मक तरीके से सक्रिय करना।"[10] राकेश वत्स ने रचनात्मक स्तर पर व व्यावहारिक स्तर पर सक्रियता को संभव माना है जो संघर्षशील हो। जितेन्द्र वत्स ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा है, "यह आवश्यक हो गया कि रचनाकार में व्यक्तिगत तौर पर उसे जुझारू बनाने वाली "सक्रियता" या संघर्षशीलता हो। इन्हीं अवधारणा के साथ राकेश वत्स ने सक्रिय कथा आंदोलन की शुरूआत की है।"[11] राकेश वत्स के

अनुसार, "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ, एहसास और बोध की कहानी जो आदमी की बेबसी, वैचारिक, निहत्थेपन और नंपुसकता से छुटकारा दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ और फिर बदलाव विरोधी शक्तियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। जो साहित्य की इस सार्थकता के प्रति समर्पित है, कि साहित्य संकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है, विचार और व्यवहार के बीच का पुल है अगर यह पुल जनता के बीच पहुँच कर उसे सचेत और सक्रिय की भूमिका नहीं निभाता तो उसका होना न होना एक बराबर है।"[12] सक्रिय कहानी सामाजिक यथार्थ व मानव मूल्यों से जुड़ी हुई है। सक्रिय कहानी परिवर्तन के प्रति समर्पित है। "सक्रिय कहानी एक तरफ पुराने मूल्यों का सफाया कर रही है तो दूसरे तरफ जेनुइन मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षरत भी है। नैतिकता के सभी प्रतिमानों को ध्वस्त करने में सक्रिय कहानीकारों की दिलचस्पी नहीं है।"[13]

सक्रिय कहानी आंदोलन जनता में जागरूकता पैदा करके पुरानी नैतिकता को समाप्त करना चाहती है। शोषित जन समूह के साथ हो रहे अन्याय के प्रति सक्रिय करना व व्यापक जन समर्थन प्राप्त करके शोषण से मुक्ति दिलाना चाहती है। सक्रिय कहानी आंदोलन में जनचेतना की सक्रियता को स्पष्ट रूप से दर्शाया है। सक्रिय कहानी समाज में व्याप्त शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है। "सक्रिय कहानी का सर्वाधिक बल सक्रियता पर है यह सक्रियता पात्रों और विचारों की सक्रियता पर है जो समाज से सभी प्रकार के शोषण और उत्पीड़न को समाप्त करना चाहती है। सक्रियता के केंद्र में वह साधारण जन है जिसका शोषण हो रहा है, किन्तु यही साधारण जन शोषक-शक्तियों के विरुद्ध सक्रिय न होकर इन शक्तियों को समाप्त करने के लिए समर्पित है।"[14] जयभगवान गोयल सक्रिय कहानी की सक्रियता पर विचार व्यक्त करते है कि, "सक्रियता की पहचान रचना में, रचना के पात्रों के स्तर पर नहीं, बल्कि पाठकों की प्रतिक्रिया और संवेदना के स्तर पर ही जा सकेगी।"[15] सक्रिय कहानी आंदोलन ने जनचेतना की सक्रियता को उजागर किया है। शोषकों के विरुद्ध जागरूकता उत्पन्न की है। लालचन्द गुप्त 'मंगल' का कथन है- "सक्रिय

कहानी के संदर्भ में सोच और अमल के ऐक्य की मसीहाई मुद्रा में उद्घोषणा करना सर्वथा आत्म-प्रवचना है।"[16] सक्रिय कहानीकारों ने चारों ओर व्याप्त आक्रोश, विद्रोह व साम्प्रदायिक दंगों से जो सामाजिक जीवन प्रभावित हुआ, सक्रिय कहानी आंदोलन ने उन पर भी दृष्टि डाली है। विसंगति और व्यर्थ को भी अर्थवान बनाने का प्रयास किया है। सक्रिय कहानी सामाजिक, आर्थिक शोषण के विरोध में शोषित जनता के अधिकारों का समर्थन करती है। "सक्रिय कहानी की आस्था सीधे कुर्सी हथिया लेने में नहीं है। वह जनता में जागरूकता पैदा करना चाहती है। इसके लिए साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका की जरूरत को वह स्वीकारती है। वह साहित्य को जनता से जोड़ना चाहती है, जन नेताओं या किसी पार्टी के कार्ड होल्डर मेम्बरों से नहीं। सक्रिय कहानी अपने दामन को खून से दागदार नहीं बनाती, लेकिन उन साँडों को जमीन पर लिटा देने में भी संकोच नहीं करती, जिनकी नोकदार सींग रामचरन की अंतड़ी बाहर कर देती है। पुरानी नैतिकता को यह कहानी झटक देती है। वह पंचायत को भी नहीं मानती। शोषित जन समूह को वह अपने तर्क से समझा देता है और व्यापक जन समर्थन प्राप्त करता है।"[17]

सक्रिय कहानी आंदोलन जनता में जागरूकता पैदा करके पुरानी नैतिकता को समाप्त करने के पक्ष में है। शोषित जन समूह के साथ हो रहे अन्याय के प्रति सक्रिय करना व व्यापक जन समर्थन प्राप्त करके शोषण से मुक्ति दिलाना सक्रिय कहानी आंदोलन का उद्देश्य है। हेतु भारद्वाज सक्रिय कहानी के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है-"सच्चाई, ईमानदारी तथा दूसरों की भलाई के लिए संघर्षरत पात्रों को सक्रिय कहानी में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। सक्रिय कहानी के पात्र जनसमर्थक मूल्यों के पक्षधर है।"[18] सक्रिय कहानी आंदोलन में राकेश वत्स के अतिरिक्त रमेश बतरा, सच्चिदानन्द, धूमकेतु, चित्रा मुद्गल, विकेश निझावन, सुरेन्द्र सुकुमार, धीरेन्द्र अस्थाना, कुमार संभव, नवेन्दु, स्वदेश भारती, सुरेन्द्र मनन, वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता सक्रिय कहानी के प्रमुख कहानीकार है। 'उसका फैसला' (सुरेन्द्र सुकुमार), 'जंगली जुगराफिया' (रमेश बतरा), 'पहली जीत' (विकेश निझावन), 'आखिरी मोड़' (कुमार संभव), 'काले पेड़' (राकेश वत्स), 'एक न एक दिन' (नवेन्दु), 'लोग हाशिये पर' (धीरेन्द्र अस्थाना), 'उऋण' (सुरेन्द्र सुकुमार), 'उसका फैंसला' (सुरेन्द्र

सुकुमार) आदि सक्रिय कहानी के प्रमुख कहानीकार रहे हैं। सक्रिय कहानी के कथाकारों ने सक्रिय कहानी में पात्र और विचारों की सक्रियता संघर्षशीलता पर बल दिया है। लेकिन सक्रिय कहानी आंदोलन का यह बल व्यापकता को प्रभावित न कर सका। सक्रिय कहानी आंदोलन अपने आप में एक सीमित आंदोलन रहा। यह आंदोलन अपनी अलग पहचान नहीं बना पाया। राकेश वत्स द्वारा संपादित 'मंच' त्यागने पर यह आंदोलन समाप्त हो गया। सक्रिय कथाकार मानव के शोषण व अन्याय के प्रति प्रत्यनशील तो रहे, लेकिन चरम सीमा तक नहीं पहुँच पाये। इसमें सम्मिलित लेखकों ने शीघ्र ही सक्रिय कहानियों को लिखना बंद कर दिया जिससे 'मंच' पत्रिका भी बंद हो गयी। सक्रिय कहानी आंदोलन का व्यापक व स्थायी प्रभाव नहीं दिखाई दिया जिससे यह आंदोलन धीरे-धीरे समाप्त होता नजर आया।

2.1.3 जनवादी कहानी :

जनवादी कहानी आंदोलन को प्रगतिशील आंदोलन का रूप माना जाता है। जनवादी कहानी को स्पष्ट रूप से पहचान आठवें दशक से प्राप्त हुई। जनवादी लेखक संघ की 1982 दिल्ली में स्थापना हुई, इसी के साथ जनवादी कहानी आंदोलन का आरम्भ हुआ। 1982 को दिल्ली में जनवादी लेखक संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के पश्चात् जनवादी कहानी पर अनेक पत्रिकाएँ 'कलम', 'कथन', 'उतरगाथा' प्रकाशित होने लगी। जनवादी लेखक संघ ने केन्द्रीय पत्रिका 'नया पथ' सन् 1987 में आरम्भ की, जिससे जनवादी कहानी को विशेष बल मिला जनवादी कहानी आंदोलन निम्न वर्ग के जीवन संघर्ष को केन्द्र में रखती है। जनवादी कहानी की वैचारिकता मार्क्सवादी है। जनवादी कहानी परंपरा की शुरूआत प्रेमचन्द से मानी जाती है। प्रेमचन्द की कहानियाँ 'पूस की रात', 'कफन' में जनवादी चेतना की झलक देखी जा सकती है। प्रेमचन्द ऐसे शख्स थे, जिन्होंने हिंदी कहानी को कल्पना की रंगीनियों से निकाल कर यथार्थ के स्तर पर प्रतिष्ठित किया और सर्वहारा वर्ग तथा निम्न वर्ग के पात्रों को अपने साहित्य में नायकत्व प्रदान करते हुए उनके जीवन यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान की। यही यथार्थ जनवादी चेतना का आधार भी है। जनवादी कहानियों का उद्‌भव प्रेमचन्द की कहानियों के माध्यम से हुआ। "जनवादी कहानियों के साथ ही, प्रेमचन्द की परंपरा पुनः कहानी

से आ जुड़ी, यद्यपि अकहानी, सचेतन कहानी, स्वयं में ही जनवादी कहानी का संस्करण थी। जिसने मध्य वर्ग, निम्न वर्ग के जीवन स्तर तक ही अपने आपको महमूद रखा, जबकि जनवादी कहानी ने अपने को आम आदमी के केन्द्र में रखने की ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया।"[19]

जनवादी कहानी में श्रमजीवी वर्ग, मजदूर वर्ग, किसान वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है। जनवादी कहानी का सर्वाधिक बल पूंजीवादी व सामंतवादी शक्तियों द्वारा किए जा रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना है। जनवादी कहानी यथार्थवादी दृष्टि पर बल देती है एवं पूंजीवादी वर्ग का विरोध करती है। "जनवादी कहानी मूलत: मार्क्सवादी विचारधारा के दर्शन को स्वीकारती है और उसकी पूरी सहानुभूति सर्वहारा या श्रर्मजीवी वर्ग के साथ है। इसलिए इस कथा आंदोलन में विशेषत: सर्वहारा वर्ग के पात्रों को केन्द्र में रखकर कहानियों का सृजन किया गया और थके हारे पात्रों की जगह जुझारू और संवेदनशील पात्रों को प्रतिष्ठित किया गया।"[20] जनवादी कहानी आंदोलन मुख्यत: किसानों, मजदूरों, व निम्न वर्ग के जीवन संघर्ष को दर्शाती है। अत: कह सकते हैं कि जनवादी कहानी किसान व मजदूर वर्ग के संघर्ष की कहानी है। हेतु भारद्वाज ने जनवादी कहानी के बारे में कहा है "जनवादी कहानी किसान-मजदूर के संघर्ष की कहानी है तथा वह इस संघर्ष को बहुत सूक्ष्मता के साथ उभारती है। जनवादी कहानी जीवन के यथार्थ के संदर्भ में सत्य की पराजय दिखाकर भी सत्य की ओर आकर्षित करने का कार्य करती है। क्योंकि वह दृष्टिकोण और विचारधारा को समग्रता के साथ चित्रित करती है।"[21]

जनवादी कहानी में संघर्ष की दिशा अत्यंत सार्थक है। जनवादी कहानी दलित, शोषित व पीड़ित वर्ग के यथार्थ को कहानी का विषय बनाती है। अशोक भाटिया जनवादी कहानी के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है-"जनवादी कहानी ने इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार किया कि मध्यवर्ग का भविष्य सर्वहारा के साथ है और उसे सर्वहारा ही बल प्रदान कर सकता है। जनवादी कहानी मध्यम वर्ग तथा सर्वहारा पर किए जा रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष पर सर्वाधिक बल देती है। यह संघर्ष बहुआयामी है। जनवादी कहानी में मध्यम वर्ग के विभिन्न आयाम खुलते दिखाई देते हैं। इनमें सर्वाधिक बल मध्यवर्गीय संस्कारों से

मोह-भंग पर है। इसके अतिरिक्त आत्मालोचना, सामाजिक विसंगतियों के प्रति तीव्र असन्तोष तथा सर्वहारा के निकट जाने की लालसा- इन पक्षों पर जनवादी कहानी विशेष बल देती है।"[22] जनवादी कहानी आंदोलन में किसान व मजदूरों के संघर्ष को ही नहीं उठाया गया अपितु अन्याय के विरुद्ध संगठित होते भी दिखाया गया है। राजनीतिक भ्रष्टाचार, जातिगत संघर्ष एवं मानव अधिकारों के प्रति समर्थन प्रदान किया गया है। "जनवादी कहानी की विशिष्टता इस बात में है कि वह समस्याओं को जीवन के बीच से उठाती है, साधारण मनुष्य के संघर्ष की कथा गढ़ती नहीं है। यह कहानी मार्क्सवादी विचारधारा को स्वीकार करती है, किन्तु उसे अनुभव से जोड़कर प्रस्तुत करती है। जनवादी कहानी मुख्य रूप से किसान-मजदूर आदि सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को सूक्ष्मता एवं सजगता से उभारती है।"[23] जनवादी कहानी आंदोलन जीवन की समस्याओं के संदर्भ में देखा जा सकता है। वेदप्रकाश अमिताभ ने जनवादी कहानी के अनुभवों के प्रति अपने विचार रखते हैं-"जनवादी कहानी का प्रस्थान बिन्दु जनसामान्य के सामाजिक अनुभवों, इंसानी रिश्तों और अंतर्विरोधों को बारीकी से देखना परखना है।"[24]

जनवादी कहानी यथार्थ के संदर्भ में सत्य पर आधारित है। जनवादी कहानी आंदोलन के माध्यम से मनुष्य की प्रत्येक समस्याओं को उभारा है। "जनवादी कहानी मुख्यत: निम्न वर्ग के जीवन संघर्ष को रचना के केन्द्र में रखती है साथ ही साथ गांव के माहौल को भी उजागर करती है। गांव में व्याप्त भुखमरी, बेकारी, राजनैतिक-भ्रष्टाचार व जातिवाद संघर्ष को ही कहानी का विषय नहीं बनाया, बल्कि इन सबके साथ उभरती हुई उस नयी जन चेतना को भी स्वर दिया गया जो सामंती पूंजीवादी व्यवस्था के अंत की सूचक है।"[25] जनवादी कहानी आंदोलन का मूल स्वर हिंसा के पक्ष में नहीं है। जितेन्द्र वत्स जनवादी कहानी को लेकर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-"वह जानता है कि एक शोषक को मारने में कुछ नहीं होगा, जरूरत तो पूरी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की है, क्योंकि असली शोषक तो वही है, शोषक वही पैदा भी करता है इसलिए जनवादी कहानीकार नक्सलवादियों की तरह हिंसा के पक्ष में खुलकर नहीं है।"[26] जनवादी कहानी

आंदोलन "व्यक्तिगत स्तर पर सत्य, ईमानदार, परहित आदि मूल्यों के लिए संघर्षरत चरित्र भी जनवादी कहानी में उपलब्ध है।"[27]

जनवादी कहानी आंदोलन में किसान, मजदूर व निम्न वर्ग संघर्षरत है। वे अन्याय, शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाते है। जनवादी कहानी में पात्र संघर्षशील है। जनवादी कहानी आंदोलन में रमेश उपाध्याय, रमेश बतरा, स्वयं प्रकाश, हेतु भारद्वाज, नमिता सिंह, असगर वजाहत, उदय प्रकाश, राजेश जोशी, सुरेन्द्र मनन, धीरेन्द्र अस्थाना, भैरवप्रसाद गुप्त, विजय कान्त, आनन्द भारती, राजेन्द्र यादव, विष्णु नागर, सुरेश काँटक, शिवमूर्ति शशांक, संजीव, शेखर जोशी, पुन्नी सिंह, भीष्म साहनी, तारा पांचाल, मार्कण्डेय, काशीनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, चन्द्र प्रकाश पाण्डेय आदि जनवादी कहानीकार है। 'फेंस के इधर-उधर' (ज्ञानरंजन), 'सुधीर घोषाल' (काशीनाथ सिंह), 'सूरज कब निकलेगा' (स्वयं प्रकाश), 'कसाईबाड़ा' (शिवमूर्ति), 'बीच के लोग' (मार्कण्डेय), 'अपराध' (संजीव), 'गदल' (रांगेय राघव), 'हड़ताल' (भैरवप्रसाद गुप्त), 'हसा जाई अकेला' (मार्कण्डेय), 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'दोपहर का भोजन' (अमरकान्त), 'कोसी का घटवार' (शेखर जोशी), 'सुबह का डर' (काशीनाथ सिंह), 'पंच' (इसराइल), 'हनुमान' (भैरवप्रसाद गुप्त), 'पहली हार' (विजयकान्त), 'गलत इतिहास' (हेतु भारद्वाज), 'कल्पवृक्ष' (रमेश उपाध्याय), 'सनीचरा' (आनंद भारती), 'टेपचू' (उदय प्रकाश), 'डीजल' (हेतु भारद्वाज), 'मंगला की टिकुली' (भैरवप्रसाद गुप्त), 'समाधान' (नमिता सिंह), 'बूढ़ी आग' (हेतु भारद्वाज), 'देवी सिंह कौन' (रमेश उपाध्याय), 'कत्ल की रात', 'जिन्दा होने के खिलाफ', (रमेश बतरा), 'आस्मां', (स्वयं प्रकाश), 'सुबह-सुबह', 'अब यही होगा' (हेतु भारद्वाज), 'राजा का चौक', 'काले अँधरे की मौत (नमिता सिंह), 'दिल्ली पहुँचना है', 'मछलियाँ (असगर वजाहत), 'मौसा जी' (उदय प्रकाश), 'सोमवार' (राजेश जोशी), 'षड़यंत्र', 'खून की लकीर' (सुरेन्द्र मनन), 'लोग हाशिये पर', 'सूरज लापता है' (धीरेन्द्र अस्थाना) आदि जनवादी कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय है। जनवादी कहानी आंदोलन के अंतर्गत जनवादी लेखकों ने निम्न वर्ग के भविष्य की दिशा निर्धारित करने के लिए प्रयास करते रहे है। जनवादी कहानी आंदोलन एक प्रगतिशील आंदोलन के रूप में माना गया है।

2.1.4 शुद्ध कहानी :

जनवादी कहानी के पश्चात् शुद्ध कहानी का आगमन हुआ। सन् 1995 में बिहार से शुद्ध कहानी (प्रवेशांक) नाम से 11 कहानियों का संकलन संपादित किया गया। शुद्ध कहानी आंदोलन संकुचित विचारधाराओं को सुलझाने का प्रयास करती है। प्रश्न यह उठाया जाता है कि शुद्ध कहानी आंदोलन की आवश्यकता क्यों पड़ी? शुद्ध कहानी आंदोलन विचारों व संस्कारों तथा नारी संबंधी सामंती सोच का विरोध करना चाहती है। शुद्ध कहानी में यह बताया गया है, कि पाठकों का सही मार्ग दर्शन नहीं हो पा रहा है। हिंदी कहानी की पठनीयता समाप्त होती जा रही है। पाठकों के समक्ष यौन संबंधी लेखन प्रस्तुत किए जा रहे है। धार्मिक पुरुषों पर कहानियां लिखी जा रही है। नैतिकता व संस्कृति का ह्रास हो रहा है। जिससे कहानी विधा काफी प्रभावित हुई। इसी कारण शुद्ध कहानी आंदोलन अपना अस्तित्व स्थापित करने में असफल रही।

शुद्ध कहानी एक आंदोलन का रूप धारण न कर सकी। इस कहानी आंदोलन में संघर्ष बल दिखाई नहीं देता। शुद्ध कहानी आंदोलन अपने नाम के विपरीत स्थापित हुई। इस कहानी में कोई सुधारात्मक प्रवृत्तियां स्पष्ट नहीं होती है। जिससे शुद्ध कहानी एक आंदोलन का रूप धारण न कर सकी। शुद्ध कहानी आंदोलन से पहले जो आंदोलन हुए जैसे समांतर कहानी, आंदोलन, सक्रिय कहानी आंदोलन जनवादी कहानी आंदोलन, इन आंदोलनों ने जन समर्थन प्राप्त करके उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करके सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट रूप से दर्शाया है। समाज में रहने वाले जन सामान्य जो शोषित पीड़ित व अन्य सभी वर्गों के अधिकारों का समर्थन किया। साधारण जन के साथ हो रहे अन्याय के प्रति सचेत किया। हिंदी कहानी में कहानीकारों ने शुद्ध कहानी आंदोलन पर अधिक महत्त्व प्रदान नहीं किया है। उनके कहानीकार, इस अवधि में समांतर कहानी आंदोलन, सक्रिय कहानी आंदोलन, जनवादी कहानी आंदोलन में सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट किया एवं मानवीय संघर्ष को स्पष्ट किया। उन्होंने सामान्य जन के आत्मविश्वास एवं आकांक्षाओं को जागरूक करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिससे मनुष्य भारतीय समाज में रहकर अपने अधिकारों से वंचित न रह सके। समकालीन हिंदी

कहानी के इतिहास में शुद्ध कहानी आंदोलन एक नाममात्र आंदोलन है। शुद्ध कहानी आंदोलन अपने अस्तित्व को स्थापित करने में असफल रहा।

2.1.5 इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी :

इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य अपने आप में विशिष्ट हैं क्योंकि यह साहित्य परंपरा की लीक से हटकर अपने युग और समाज के साथ कदमताल करते हुए गतिमान है। आधुनिक हिंदी साहित्य में कहानी विधा में अनेक परिवर्तनों के अनुसार सकारात्मक व नकारात्मक रूप प्रकट किए है। बीसवीं सदी की हिंदी कहानी में जो समस्याएं व्याप्त थी, इक्कीसवीं सदी में वही समस्याएं ज्यादा विकराल रूप लेकर उभरी है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी विषय सीमित न होकर सभी विषयों के प्रति दृष्टिकोण को अपनाया है। वर्तमान में नए कहानीकाल में हिंदी कहानी नए अनुभवों के साथ प्रस्तुत हुई है।

इक्कीसवीं सदी के कहानीकार वर्तमान की समस्याओं से जूझ कर हमारे समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। समाज में फैली गम्भीर बुराईयों, समस्याओं को लेकर कहानी में जागरूकता उत्पन्न की है। साहित्य में भी अनेक प्रकार के वर्ग बन गए है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में सामाजिक न्याय को लेकर जो विमर्श चल रहे है उनमें स्त्री विमर्श व दलित विमर्श प्रमुख विमर्श है। दलित और स्त्री के अधिकारों को लेकर सामाजिक न्याय के पक्ष में इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में विस्तार से चर्चा हुई है। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों में उर्मिला शिरीष (निर्वासन), कविता (उलटबांसी), एस॰ आर॰ हरनोट (मिट्टी के लोग), जया जादवानी (मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ काँधे पे अपना हल लिये, अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता है), अंजु दुआ जैमिनी (सीली दीवार, इस द्वार से उस द्वार), अल्पना मिश्र (भीतर का वक्त), मनीषा कुलश्रेष्ठ (कठपुतलियाँ), ज्ञान प्रकाश विवेक (सेवानगर कहां है), चित्रा मुद्गल (लपटें), सूरजपाल चौहान (नया ब्राह्मण), रत्न कुमार सांभरिया (खेत तथा अन्य कहानियां, काल तथा अन्य कहानियाँ), दयानंद बटोही (सुरंग), सुशीला टाकभौरे (संघर्ष), ओमप्रकाश वाल्मीकि (घुसपैठिये, सलाम) आदि कहानीकार है।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में सामाजिक न्याय के प्रत्येक पक्ष को उभारा है। जिसमें विशेषत नारी समस्या के न्याय व अन्याय एवं दलितों की स्थिति में न्याय व अन्याय पक्ष को उजागर किया है। इन कहानीकारों की कहानियों में समाज के विकास की चिंता व अन्याय पक्ष को उजागर किया है। स्त्री व दलितों के शोषण, उत्पीड़न को दर्शाया है। वर्तमान समाज में नारी व दलितों की स्थिति कुछ परिवर्तन आने के बावजूद भी अन्याय पक्ष को चित्रित कर प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट किया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में वर्णगत, धर्मगत, नक्सलवाद, आंतकवाद को वैश्वीकरण रूप से प्रस्तुत किया है।

2.2 इक्कीसवीं सदी : युग परिवेश

इक्कीसवीं सदी अपने आप में एक विशिष्ट सदी है। जो निरंतर प्रगतिशील एवं परिवर्तनशील के पथ पर अग्रसर है। इक्कीसवीं सदी का साहित्य भी अपने आप में विशिष्ट है। साहित्य मानव जीवन को सार्थकता का प्रकाश प्रदान करता है। आज का परिदृश्य काफी परिवर्तनशील है। नई सदी में मनुष्य के ज्ञान-विज्ञान में वृद्धि हुई है। इक्कीसवीं सदी में मनुष्य सभी परिस्थितियों से परिचित है। एवं प्रभावित भी हुआ है। नई सदी के परिदृश्य में राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित हुई है। सभी परिस्थितियां देश व समाज का परिदृश्य होती है एवं पथ-प्रदर्शक भी होती है। जो वर्तमान की समस्याओं के समाधान के लिए जन-साधारण को सही मार्ग दिखाती है। इक्कीसवीं सदी की प्रत्येक परिस्थितियाँ हर क्षेत्र के संदर्भ में प्रस्तुत की जाती है।

(i) राजनीतिक परिस्थितियाँ

(ii) सामाजिक परिस्थितियाँ

(iii) आर्थिक परिस्थितियाँ

(iv) धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ।

2.2.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ :

इक्कीसवीं सदी के युग परिवेश में राजनीति विकास के दौर में समाज का बहुत बड़ा भाग राजनीति के अंतर्गत प्रवेश कर चुका है। वर्तमान युग में राजनीति

में व्याप्त भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। राजनीति में विचारधारा के मत का सिद्धांत समाप्त हो गया है। वर्तमान युग में नेता धन के आधार पर वोट खरीद कर राजनीति में आसानी से आ जाते है। वे अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए दंगे व आंतक की घटनाएं पैदा करते हैं। राजनीति का स्वरूप इतना विकृत हो गया है कि उसमें लोक कल्याण की भावना विलुप्त हो गई है। राजनीति में वोट बैंक की राजनीति बना कर अपना लक्ष्य बना लिया है। राजनीति का अपराधीकरण हो गया है। राजनीति में अपराधीकरण के प्रवेश से हिंसा का होना अब कोई नई बात नहीं है। राजनीति भ्रष्टाचार के कारण सरकारी सेवाओं, विशेषत: प्रशासनिक सेवाओं का भी राजनीतिकरण हो गया है। भ्रष्टाचार आज देश की सबसे गम्भीर समस्या बनी हुई है। अन्ना द्वारा किए गए आंदोलन से भ्रष्टाचार एवं भ्रष्ट लोगों के खिलाफ ठोस कदम उठाये गए, परंतु आंदोलन के बावजूद भी भ्रष्ट लोग भ्रष्टाचार को फैलाये जा रहे हैं।

आज भारत में भाषावाद, जातिवाद, सांप्रदायिकता, राजनीतिक अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, अवसरवाद जैसे दूषित तत्वों के कारण देश की एकता खतरे में मंड़रा रही है जिसके अंतर्गत राज्यों की राजनीति में अलग-अलग दलों का प्रभुत्व भारतीय राजनीति को प्रभावित कर रहा है। मूल्यविहीनता और विचारधारा के अभाव के कारण भारतीय राजनीति के नेतृत्त्व में भ्रष्टाचार व्याप्त है। राजनीति में धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्र के कारण फैली संकीर्ण भावना जाग्रत है। राजनीति में लोग घृणा अहिष्णुता, स्थानीयता, जाति, धर्म, वर्ग एवं क्षेत्र संबंधी सकीर्णताओं को शामिल करते हैं। इसके बावजूद धार्मिक कट्टरता, आंतकवाद, वामपंथी उग्रवाद और जातीय हिंसा देश की एकता व आंतरिक सुरक्षा के लिए चुनौती बनी हुई है। पुलिस प्रशासन व्यवस्था का भी बर्बर रूप हमारे समक्ष स्पष्ट रूप से विकसित है। वैचारिक चिंतन के अभाव के कारण शिक्षित व अशिक्षित लोग प्राय: एक जैसे बने हुए है। वर्तमान में देश के बड़े व छोटे नेताओं में बेईमानी व जातीयता की भावना विद्यमान है जिसके कारण राजनीति पूरी तरह से प्रभावित है। राजनीति में लोगों का सिर्फ स्वार्थ छिपा हुआ है। लोकतंत्र की समाप्ति हो चुकी है। "आज राजनीति एक व्यवसाय बन कर रह गई। उसमें से लोक कल्याण की भावना पूर्णत: विलुप्त हो गई। आज

भारतीय राजनीति का स्वरूप इतना विकृत हो गया है कि अधिकांश बुद्धिजीवी लोगों ने राजनीति में भाग लेना बंद कर दिया है। यही नहीं भारत में समग्र राजनीति को वोट की राजनीति बनाकर अपवित्र कर दिया गया है। राजनीति के क्षेत्र में प्रत्येक नीति वोट की रणनीति को लक्ष्य करके निर्धारित की जाती है। राजनीति में 'राज मुख्य हो गया है और 'नीति' गौण हो गई है।"[28]

इक्कीसवीं सदी में राजनीति का स्वरूप पूर्णत: भ्रष्ट हो चुका है। देश की समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। आज नक्सलवाद भी देश की सबसे बड़ी समस्या बना हुआ है। नेताओं ने समस्याओं का कारण जानते हुए भी कुशासन, भ्रष्टाचार व निहित स्वार्थों के चलते समाधान नहीं किया। देश की न्यायपालिका बिकाऊ हो चुकी है। अगनित संख्या में लंबित मामलों पर कोई कार्यवाही नहीं की जाती है। गरीबों के प्रति अत्याचार, अन्याय व शोषण पूर्ण रूप से व्याप्त है। गरीब जनता के लिए न्याय पाना अत्यंत कठिन हो गया है। राजनीति में राजनेताओं द्वारा आपसी मतभेद व स्वार्थों की होड़ में देश की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। नक्सलवाद व आतंकवाद देश की बड़ी समस्याएं हैं। पुलिस प्रशासन व्यवस्था को कड़े प्रशिक्षण की आवश्यकता है। राष्ट्रीय सुरक्षा गार्द के महानिदेशक 'आरके मेढेकर' ने भी देश में आंतकवाद की समस्या को लेकर स्पष्ट कहा है "आतंकवाद एक व्यापक संकट है इस संकट का सामना करने के लिए विश्व के सभी राष्ट्रों को अपनी राष्ट्रीय और नागरिक सुरक्षा के लिए अपने उपलब्ध संसाधनों का इस्तेमाल करते हुए एक प्रभावी सुरक्षा रणनीति बनाने की जरूरत है।"[29] आज देश में नक्सलवाद कई राज्यों में फैल जाने से देश की आंतरिक सुरक्षा भी खतरे में मंडरा रही है। जिससे पूरा समाज प्रभावित है।

2.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :

स्वतंत्रता के पश्चात् समाज में अनेक परिवर्तनों के अनुसार नई-नई शृंखलाओं को जन्म दिया है। सामाजिक संदर्भ में व्यक्ति समाज की महत्त्वपूर्ण ईकाई है। व्यक्ति द्वारा ही परिवार का निर्माण किया जाता है जिससे समाज का निर्माण होता है। व्यक्ति समाज में रहकर सामाजिक प्राणी बन जाता है। इक्कीसवीं सदी के सामाजिक संदर्भ में परिवर्तनों के कारण व्यक्ति में कुण्ठा, घुटन, टूटन, संत्रास, हिंसा,

आत्मविश्वासहीनता आदि का बीजारोपण हुआ है। इक्कीसवीं सदी के समाज की बात करें तो "वर्तमान के हमारे समाज को किस रूप में देखें? नया सूचना समाज, विश्वस्तर के पूँजीवादी विकास में शरीक हो जाने की उत्तेजक चाह रखने वाला समाज, ग्लोबल एकॉनामी पर आधारित समाज, प्रौद्योगिक की दौड़ में होड़ लगाता समाज, उत्तर आधुनिकता के नए सांस्कृतिक वशीकरण में डूबा समाज, विचारधारा और मूल्यों के प्रति टूटती प्रतिबद्धता वाला समाज या फिर दलित, शोषित, वंचित, उत्पीड़ित समाज।"[30]

इक्कीसवीं सदी के समाज में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो गया है। आज के समाज में व्यक्ति तनाव व अवसाद की परिस्थितियों से घिरा हुआ है। औद्योगिक नगरीकरण एवं पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव के कारण नवीन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा होने लगी है। मनुष्य के ज्ञान-विज्ञान में वृद्धि हुई है परन्तु बढ़ते मूल्यों ने असुरक्षा की भावना पैदा कर दी है। नई-नई तकनीक व्यवस्था आने से बेरोजगारी घटने की बजाय बढ़ गई है। समाज में रहकर व्यक्ति को अपने भविष्य की चिंता सताए जा रही है। समाज में गरीबी, बेरोजगारी के साधन बढ़ गये हैं। बेरोजगारी के कारण व्यक्ति अनेक मनोविकारों से घिरा हुआ है। वर्तमान समाज में व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया है कि वह एक-दूसरे की तरक्की से ईर्ष्या करने लगा है। आज व्यक्ति ईर्ष्यालु व हीन भावना से ग्रस्त है। यहां तक कि वह आत्महत्या करने पर भी मजबूर है। वर्तमान में मानव जीवन दृष्टि और जीवन शैली खण्डित हो चुकी है। व्यक्ति को सामाजिक तौर विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। आज की सामाजिक व्यवस्था अनेक तरह के नए दबावों की गिरफ्त में है।

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की अनिवार्यता को लेकर नए संघर्षों को जन्म दिया है। आज व्यक्ति परिवार में भी आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी हो गया है। समाज में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं एवं एकल परिवारों की प्रमुखता बढ़ रही है। व्यक्ति संयुक्त परिवार में रहकर अपने जीवन का निर्वाह नहीं कर सकता है। व्यक्ति संयुक्त परिवार को महत्वत्ता न देकर एकल परिवार में रहकर जीवन जीने का फैसला किया है। परन्तु आज समाज में व्यक्ति इतना तनावग्रस्त व मनोविकारों से घिरा हुआ है कि वह अपने जीवन में विवाह के बंधन को भी मान्यता प्रदान

नहीं करता। आज समाज में व्यक्ति अपने जीवन में लिवइंग रिलेशनशिप को महत्वत्ता प्रदान करता है। वह विवाह के बेड़ियों में बंधना नहीं चाहता।

वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष के संबंधों के बिखराव और तनावों में वृद्धि होती जा रही है। समाज में पति-पत्नी के संबंधों में तनाव होने के कारण बच्चों का भविष्य असुरक्षित हो गया है। कामकाजी पति-पत्नी होने के कारण बच्चों में संस्कार व नैतिकता विलुप्त हो गई है। परिवार में वृद्धों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी है। उन्हें मान-सम्मान का दर्जा न देकर बोझ समझा जाने लगा है। वृद्ध लोग परिवार में प्रताड़ना व अन्याय का शिकार होने लगे है। मनुष्य अपने वृद्धों के प्रति सेवा भाव की भावना को त्याग दिया है। वर्तमान समाज में शहरीकरण प्रक्रिया का चलन है। लोग गांवों को छोड़कर शहरों की तरफ कदम दिन प्रतिदिन बढ़ा रहे है। आज समाज में अवैध यौन संबंधों में अभिवृद्धि होती जा रही है। समाज में फैली रूढ़िवादी मान्यताएं, दहेज प्रथा, विधवा विवाह, नारी अशिक्षा टूट कर खण्डित होने लगी है। परन्तु ये सब सामाजिक बुराइयां काफी हद तक अभी भी विराजमान है। आज भी नारियां दहेज की बली चढ़ाई जाती है। भारतीय समाज में कन्याभ्रूण हत्या का प्रचलन बढ़ रहा है। बलात्कार, शोषण एवं अन्य घटनाएं सरेआम हो रही है। वर्तमान समाज में कन्या भ्रूण हत्या के कारण लिंगानुपात बिगड़ गया है। समाज में जाति व सांप्रदायिकता की भावना विराजमान है। जिससे भारतीय समाज पूरी तरह से प्रभावित है।

2.2.3 आर्थिक परिस्थितियाँ :

इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर आर्थिक परिस्थितियाँ काफी प्रभावित हुई हैं। नई सदी में आकर अर्थ-व्यवस्था की स्थिति निराशाजनक प्रतीत हुई है। बाजारवाद प्रक्रिया प्रचलन में वृद्धि निरंतर बढ़ती जा रही है। आज के बाजारवाद की प्रक्रिया में मनुष्य केवल उपभोक्ता बन कर रह गया है। आज का बाजार वास्तव में बाजार की जगह से उठकर मनुष्य में घुस गया है। इक्कीसवीं सदी सूचना, संचार व विज्ञान की सदी है। वैज्ञानिक तकनीक ने मनुष्य को इतना शक्तिशाली बना दिया है। आज मानव ने केवल भौतिक अपितु प्राकृतिक साधनों पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया है। आज मानव ने सुख-सुविधाओं के तमाम साधनों को अपनी

मुट्ठी में कर लिया है। आज का मनुष्य इतना स्वार्थी प्रवृत्ति का हो गया है कि वह मानवीय रिश्तों को खत्म करके केवल लाभ की बात करता है। प्रोफेशनलिज्म के कारण मनुष्य स्वार्थ पर टिका है।

इक्कीसवीं सदी के युग व परिस्थिति के अनुरूप मानव के व्यवहार, विचार व स्वभाव में निरंतर परिवर्तन हुआ है। आधुनिक युग में बेरोजगारी अपनी चरम सीमा पर विराजमान है। शिक्षा की संपूर्णता होने के कारण भी बेरोजगारी फैली है। मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार रोजगार न मिलना बेरोजगारी का भयानक रूप है। वर्तमान युग में स्थान-स्थान पर शैक्षणिक संस्थान खोले जा रहे हैं। शिक्षा का व्यापारीकरण हो चुका है धन को महत्वत्ता प्रदान कर शिक्षा को खरीदा व बेचा जा रहा है। रोजगार के साधन विलुप्त हो गये है। अर्थ-व्यवस्था में असंतुलित विकास के कारण गरीबी, भुखमरी, अनपढ़ता जैसे गम्भीर समस्याओं का निरंतर विकास हो रहा है। आज दिन-प्रतिदिन महंगाई एवं बेरोजगारी आसमान छूती जा रही है। वर्ष 2012-13 के केन्द्रीय बजट के अनुसार आम आदमी को और अधिक मंहगाई तथा करों की मार का सामना करना पड़ेगा। अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कच्चे तेल के मूल्य, डीजल के मूल्य, पेट्रोल के मूल्य एवं रसोई गैस वृद्धि के मूल्यों में तेजी से वृद्धि हो रही है स्पष्ट कहें तो दाल रोटी से लेकर पेट्रोल तक के दामों ने आदमी की कमर तोड़ दी है। एक गरीब व्यक्ति के लिए सब साधन जुटाने उपलब्ध नहीं है। समाज में गरीबों की समस्याओं का निवारण न करके गरीबों को ही हटाने का प्रयत्न किया जा रहा है। गरीबी, भूखमरी व बेरोजगारी के कारण निरंतर आत्महत्याएं बढ़ती जा रही है। नई सूचनाओं की व्यवस्था और नई अर्थव्यवस्था गरीबी को कम करने या उनकी परिस्थितियों में परिवर्तन लाने में सहायक नहीं है।

समाज में ठेकेदारी प्रथा को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है। जिसके कारण कर्मचारियों को लगातार आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ रहा है। अर्थ व्यवस्था में सुधार लाने के लिए ठेकेदारी प्रथा को समाप्त करना परिवर्तनशील होगा। नई सदी में अर्थ व्यवस्था के अंतर्गत बाजार पूंजीवादी व्यवस्था का प्रमुख घटक है। "वित्तीय पूंजी का भूमण्डलीकरण और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विश्वविजय अभियान मूल्यों के नाम पर केवल बाजार में माल के दाम को महत्त्व देता है। जो मनुष्य उनके माल

का खरीददार बनने की आर्थिक क्षमता नहीं रखता, वह किसी काम का नहीं है और यह ध्यान देने की बात है, स्वचालन के इस युग में उत्पादन तक के लिए उन्हें मानवीय क्षमता की ज्यादा जरूरत नहीं रह गयी है। इसलिए यह विजय अभियान मानववाद, मानवीय क्षमता और मानव-मूल्य को रौंदने का अभियान है। अतः आज का पूंजीवाद मनुष्य की सर्जनात्मकता और मानव-मूल्यों का विरोधी है।"[31] आर्थिक परिस्थितियों के अंतर्गत आज की नारी भी उच्च शिक्षा प्राप्त करके पारिवारिक दायित्वों को निभा रही है। नारी भी आत्मनिर्भर बन कर समाज व परिवार को सुचारू रूप से चला रही है। अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण के कारण समाज को अत्याधिक हानि हुई है, बढ़ते मूल्यों ने असुरक्षा की भावना को जन्म दिया है। गरीबी, बेरोजगारी, अनपढ़ता महंगाई आदि समस्याओं ने समाज को प्रभावित किया हुआ है।

2.2.4 धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थतियाँ :

आरंभ से ही धर्म मनुष्य के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। भारतीय समाज में धर्म बहुत प्राचीन है। भारतीय समाज में धर्म में ईश्वर को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया जाता है। धार्मिक स्थिति युगीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती है। इक्कीसवीं सदी के प्रवेश में धर्म का बहुत मात्रा में विस्तार हो गया है। धार्मिक संदर्भ में धर्म में संकीर्णता उभर रही है। इक्कीसवीं सदी का धर्म आस्था की बजाय दिखावा बन कर रह गया है। धर्म केवल आंडबर मात्र बन कर रह गया है। धर्म को लेकर अनेक अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, विकृतियां उत्पन्न हो रही है। धर्म के अंतर्गत मनुष्य अपनी समस्याओं को लेकर अंधविश्वास में डूबा हुआ है। वर्तमान में धार्मिक कट्टरता भी सामने आई है। जिसके अंतर्गत अपने-अपने धर्म व संप्रदाय को बढ़ावा दिया जा रहा है। आज के समय में धर्म गुरुओं की पोल खुली है। आज साधुसंत धर्म के नाम पर आडंबर रचते हैं। आज समाज में असंख्य साधु संत हो गये है जो धन व समय का अपव्यय कर रहे हैं। वर्तमान में धर्म का अपराधीकरण भी देखने को मिलता है। धर्म के नाम पर हिंसा, भेदभाव व कट्टरता उभर कर सामने आती है। समाज में भक्ति की धारा प्रवाहित न होकर धर्म के अलग-अलग खण्ड बन गये है। समाज में सुधार व एकता की भावना विलुप्त हो

गई है। स्पष्ट कहें तो धर्म का व्यावसायीकरण हो चुका है। मनुष्य स्वयं मन और आत्मा से भ्रष्ट हो चुका है। धर्म को व्यवसाय का साधन बना कर समाज में पेश किया जा रहा है। भक्तिकाल के संतों कबीर, तुलसीदास, गुरुनानक, रैदास, मीराबाई, सूरदास आदि की भगवान् के प्रति भक्ति, श्रद्धा एवं सुधारात्मक विचारों को निषेध मानकर आज के आडंबर विकृतियों, संकीर्ण व दूषित भावनाओं के मार्ग पर मनुष्य दौड़ लगा रहा है। धर्म के माध्यम से मनुष्य में सुधारात्मक प्रक्रिया समाप्त हो चुकी है।

भारतीय संस्कृति का ह्रास हो रहा है। आज के युग में संस्कृति का आकर्षण बहुत बढ़ गया है जिससे भारतीय संस्कृति दूषित होती जा रही है। वर्तमान में सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया तेजी से चल रही है। मनुष्य में नैतिकता, आदर्श व त्याग की भावनाएँ समाप्त होती जा रही है। शिक्षा भी व्यावहारिक व नैतिक दृष्टि से पूर्ण विकसित न होकर उस में नैतिकता, त्याग व आदर्श की भावना विलुप्त होती जा रही है। वर्तमान पीढ़ी इस तरह की दूषित संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित है। नई पीढ़ी में नैतिकता व आदर्श का अभाव है। परिवार में बड़े-छोटे के प्रति आदर सम्मान व आदर्श माता-पिता की आज्ञा का पालन, सेवा भाव, वृद्धों के प्रति त्याग व सेवा भावना, गुरु के प्रति सम्मान, नतमस्तक आदि सब विलुप्त हो गया है। मानव अपने सांस्कृति मूल्यों, नैतिक मूल्यों की मर्यादा को दिन-प्रतिदिन सिमेटता चला जा रहा है।

वर्तमान समय की अधिक से अधिक समस्याएं भौतिक समस्याओं से संबंधित मानी गई है। पश्चिमी संस्कृति के अनुकरण से यह स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। जिसका असर मनुष्य के पूर्ण जीवन पर पड़ा है। चाहे वह भाषा संस्कृति पर, खान-पान, रहन-सहन आदि पर प्रभाव पड़ा हुआ है। आधुनिक सांस्कृति का आकर्षण बढ़ जाने के कारण मनुष्य ने मर्यादा की भावना को त्याग दिया है। इक्कीसवीं सदी में धर्म व संस्कृति में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। धर्म का एक नया रूप देखने को सामने आया है। साधुसंत धर्म के नाम पर पाखण्ड कर जनता को गुमराह करते है। जिससे मनुष्य आडम्बरों में फंस कर रह जाता है। निर्मल बाबा जिसने धर्म के नाम पर पाखण्ड किया और जनता को गुमराह किया। मीडिया द्वारा निर्मल बाबा के सच

को सामने लाया गया। इक्कीसवीं सदी में धीरे-धीरे साधु-संतों व धर्म गुरुओं के भ्रष्ट आचरण का खुलासा हो रहा है। जिसके अनुसार अंधविश्वासी मनुष्य सुप्त अवस्था से जाग्रत अवस्था में पहुंच जाए।

2.3 निष्कर्ष :

साहित्य में कहानी का स्थान बहुत ऊँचा है। कहानियाँ अपने सार्वभौम-आकर्षण के कारण भी प्रसिद्ध है। हिंदी कहानी का उद्‌भव व विकास यात्रा में कहानी विधा ने समय के अनुसार सफलता प्राप्त की है। स्वतंत्रतापूर्व हिंदी कहानी धन-लिप्सा, मनोरंजन व उपदेशात्मक प्रवृत्ति देखने को मिलती है। स्वंतत्रता के बाद हिंदी कहानी में नए-नए रूपों का आगमन हुआ जिससे हिंदी कहानी ने प्रारम्भ से लेकर अब तक अनेक रूप बदले है। जिसमें नई कहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहानी, जनवादी कहानी व शुद्ध कहानी आंदोलन उभर कर सामने आए। समकालीन हिंदी कहानी के संक्षिप्त इतिहास (सन् 1971-2000) समांतर कहानी से लेकर शुद्ध कहानी आंदोलन तक विस्तार से स्पष्टीकरण हुआ है। इन कहानियों में आम आदमी के जीवन में संघर्ष एवं मनुष्य की चेतना यथार्थ का नया दृष्टिकोण अपनाया है।

इन सभी आंदोलनों ने हिंदी कहानी की विकास यात्रा को सहज गति से उन्नति प्रदान की है। हिंदी कहानी निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में कहानी विधा अनेक परिवर्तनों के साथ प्रकट हुई है। नई सदी की हिंदी कहानी ने सभी विषयों के प्रति दृष्टिकोण को अपनाया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में इक्कीसवीं सदी अनेकों समस्याओं को लेकर उभरी है। इक्कीसवीं सदी सूचना एवं संचार की सदी है। विज्ञान व तकनीक ने मनुष्य को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया है। इन सारी परिस्थितियों में परिवर्तन देखा जा सकता है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में मनुष्य किस तरह से अपने मूल्यों का पतन कर रहा है। आज मानव का उद्देश्य केवल अपने निजी स्वार्थों के हितों की पूर्ति में लगा हुआ है। युग व परिस्थिति के अनुरूप मनुष्य में सम्पूर्ण तरीके से परिवर्तन हो गया है।

सन्दर्भ :

1. रेखा शर्मा, गांधीवादी विचारधारा और हिन्दी कहानी, पृ॰ 63
2. कमलेश्वर, 'सारिका,' पत्रिका, पृ॰ 9
3. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ॰ 141
4. जितेन्द्र वत्स, साठोत्तरी हिन्दी कालीन उपलब्धि और सीमाएं, पृ॰ 33
5. रेखा शर्मा, गाँधीवादी विचारधारा और हिन्दी कहानी, पृ॰ 64
6. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ॰ 93
7. कमलेश्वर, समांतर–1, भूमिका, पृ॰ 23
8. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ॰ 94
9. आनंद प्रकाश, हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया, पृ॰ 74
10. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ॰ 102
11. जितेन्द्र वत्स, साठोत्तरी हिन्दी कालीन उपलब्धि और सीमाएं, पृ॰ 39
12. राकेशवत्स (सं॰) सक्रिय कहानी की भूमिका, पंद्रह सक्रिय कहानियां, पृ॰ 1
13. जितेन्द्र वत्स, साठोत्तरी हिन्दी कालीन उपलब्धि और सीमाएं, पृ॰ 44
14. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ॰ 99
15. जयभगवान गोयल, साहित्य चिन्तन, पृ॰ 202
16. लालचन्द गुप्त मंगल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 69
17. भाऊसाहेहब परेदशी, डॉ॰ शिवाजी देवरे, राजेन्द्र यादव का रचना संसार, पृ॰ 22
18. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ॰ 103
19. राहुल भारद्वाज, नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य विघटन, पृ॰ 24
20. राम विनोद सिंह, कथातंर, पृ॰ 5, सत्यनारायण शर्मा, उदधृत स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कहानी का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, पृ॰ 109
21. हेतु भारद्वाज, हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास, पृ॰ 110
22. अशोक भाटिया, समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास, पृ॰ 147
23. वही, पृ॰ 148
24. वेद प्रकाशन अमिताभ, हिन्दी कहानी के सौ वर्ष, पृ॰ 68
25. भाऊसाहेहब परेदशी, शिवाजी देवरे, राजेन्द्र यादव का रचना संसार, पृ॰ 20
26. जितेन्द्र वत्स, साठोत्तरी हिन्दी कालीन उपलब्धि और सीमाएं, पृ॰ 36
27. वेद प्रकाश अमिताभ, हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा, पृ॰ 73
28. महावीर प्रसाद मोदी (श्रीमती सरोज मोदी) भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियाँ, पृ॰ 48
29. दैनिक ट्रिब्यून, समाचार पत्र, बृहस्पतिवार, पृ॰ 11
30. दिनेश भट्ट, नई सदी बाजार समाज और शिक्षा, पृ॰ 9
31. खगेन्द्र ठाकुर, समय, समाज और मनुष्य, पृ॰ 31